

समयसार, ३१ गाथा। यहाँ आया है ? इस प्रकार.... कहाँ आया है ? जो द्रव्येन्द्रियाँ, यह जड़ पर्याय, भावेन्द्रियाँ जो खण्ड-खण्ड ज्ञान बतलाती है वह; और पंचेन्द्रियों के विषयभूत — पाँचों इन्द्रियों के विषयभूत परपदार्थ-तीनों को जीतकर, अर्थात् तीनों से भिन्न होकर, आहाहा! ज्ञायक चैतन्यस्वभाव असली त्रिकाली असलस्वरूप के अवलम्बन से, उस पर से भिन्न करना उसे इन्द्रिय जीत कहा गया है।

ज्ञेयज्ञायक-संकर नामक दोष आता था.... क्या कहते हैं ? भगवान चैतन्यस्वरूप तो सच्चिदानन्द ज्ञायकस्वरूप, उसमें यह द्रव्येन्द्रिय परज्ञेय है, भावेन्द्रिय भी परज्ञेय है, आहाहा! और स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, देव, गुरु और शास्त्र, देश, ये सब परद्रव्य हैं; इन तीनों का लक्ष्य छोड़कर, अपने चैतन्यस्वभाव को पकड़कर, उसकी एकाग्रता होना, वह आत्मा की वास्तविक निश्चयस्तुति है। आहाहा! ऐसा है। है ? **ज्ञेयज्ञायक-संकर** (दोष) क्या कहते हैं ? भगवान चैतन्यस्वरूप में द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, वह परज्ञेय है। आहाहा! अपना स्वज्ञेय ज्ञायक चैतन्यप्रभु से द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय वे परज्ञेय हैं। आहाहा! और देव-गुरु-शास्त्र, या स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, यह सब परद्रव्य है। यह ज्ञायक चैतन्य प्रभु.... यह क्षयोपशम की अवस्था भी परद्रव्य-परज्ञेय (है)। आहाहा! देव, गुरु और शास्त्र, वह परज्ञेय है। स्वज्ञेय में परद्रव्य का सम्बन्ध-संयोग मानना, वह बड़ा - मिथ्यात्व का दोष है। आहाहा! ऐसा प्रभु अन्दर, सच्चिदानन्द प्रभु, जिसका स्वभाव अकेला ज्ञान और आनन्द है — ऐसी चीज से यह पर्याय — शरीरपरिणाम को प्राप्त पर्याय-इन्द्रियाँ, वे परज्ञेय हैं, भावेन्द्रिय — जो ज्ञान की पर्याय खण्ड-खण्ड बतलाती है, वह भी त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि से परद्रव्य है। आहाहा! तब देव, गुरु और शास्त्र तो कहाँ रह गये! यशपालभाई!

आहाहा! इन तीनों को जीतकर, अर्थात् ज्ञेयज्ञायक-संकर नाम का दोष आता था। आहाहा! ज्ञायक भगवान सच्चिदानन्द प्रभु और ज्ञेय, वे तीनों चीजें, (इनमें) एकपने की मान्यता का दोष-मिथ्यात्व का (दोष) आता था। आहाहा! **संकर नाम का दोष आता था।** संकर, अर्थात् दो का एकत्व सम्बन्ध है — ऐसा जो दोष आता था, **वह सब दूर होने से,** आहाहा! अपना भगवान ज्ञायक चैतन्य ज्योत ध्रुव... ध्रुव... प्रवाह अनादि से... आहाहा! उसको पकड़कर स्वज्ञेय को पकड़कर परज्ञेय को भिन्न कर दिया। ऐसी बात है, प्रभु! क्या हो? मार्ग-यह तो अभी प्रथम सम्यग्दर्शन और सम्यक् अनुभव की बात है। बाद में, ज्ञानी को भी राग आता है, वह दूसरी-तीसरी (३१-३३) गाथा में कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो प्रथम भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और पर — इस ज्ञायक के साथ सम्बन्ध, अर्थात् एकत्वबुद्धि थी, इतना नाश किया। स्वभाव के अवलम्बन से, (जो) पर के साथ एकत्वबुद्धि थी, वह स्वभाव के आश्रय से दोष का नाश किया। उस दोष का नाश किया, वह एक आत्मा की स्तुति हुई। अन्दर वास्तविक तत्त्व है, उसकी प्रशंसा की, स्तुति की। समझ में आया? भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय तथा संयोगी चीज की जो प्रशंसा, वह तो इन्द्रिय की प्रशंसा है। आहाहा! भगवान की स्तुति भी इन्द्रिय की प्रशंसा है। आहाहा! यहाँ कहते हैं कि **दोष आता था, सो सब दूर होने से....** आहाहा!

एकत्व में टंकोत्कीर्ण.... भगवान आत्मा एकरूप स्वभाव टंकोत्कीर्ण... जैसे टाँकी से खोदी हुई अन्दर में से प्रतिमा निकलती है, ऐसे भगवान टंकोत्कीर्ण, राग से भिन्न होकर चैतन्यदल भिन्न कर दिया। आहाहा! बालचन्दजी! इसमें ऐसा है। सुनना कठिन पड़े ऐसा है। मार्ग ऐसा बापू! आहाहा! अनन्त काल का अनजाना मार्ग.... आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि उसको जानने में लिया। आहाहा! पर के प्रति एकत्वबुद्धि की दृष्टि छोड़कर, एकत्वस्वभाव में एकत्व होना... आहाहा! आहाहा! यह पर के साथ एकत्वबुद्धि थी, वह मिथ्यात्व के संयोग का सम्बन्ध का दोष था। असंग भगवान में पर का संग मानना (दोष है)। आहाहा! गजब बात है भाई! आहाहा! वह सब दूर कर दिया। चैतन्य ज्ञायक अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का दल, आहाहा! उसका आश्रय लेकर पर की एकत्वता छोड़ दी। ऐसी बात है। अभी राग है परन्तु राग की

एकता तोड़ दी। समझ में आया? भावेन्द्रिय है, द्रव्येन्द्रिय है परन्तु उसकी एकता टूट गयी।

यह प्रथम श्रेणी की केवलज्ञानी की स्तुति कहो या केवल अकेला ज्ञान प्रभु की स्तुति कहो — ऐसी बात है प्रभु! आहाहा! 'अनन्त काल से भटक रहा, बिना भान भगवान; सेव्या नहीं गुरु सन्त को' सेव्या अर्थात् कोई पैर दबाना है? आहाहा! उनकी कही हुई आज्ञा नहीं मानी। आहाहा! सन्तों की आज्ञा, शास्त्र की आज्ञा वीतरागता प्रगट करना, वह आज्ञा है। वीतरागता कब प्रगट हो? कि पर से भिन्न होकर स्व में एकत्व करने से वीतरागता प्रगट होगी। आहाहा! उन गुरु की आज्ञा यह है। आहा! समझ में आया?

संकर नामक दोष आता था.... संकर अर्थात् एकत्व, संयोग, सम्बन्ध। **सो सब दूर होने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण....** परन्तु यह चीज क्या? इस ज्ञानस्वभाव के द्वारा... आहाहा! प्रज्ञाब्रह्म प्रभु, उस प्रज्ञा-ज्ञानस्वभाव के द्वारा, आहाहा! **सर्व अन्य द्रव्यों से परमार्थ से भिन्न ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करते हैं....** आहाहा! ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करते हैं। **वे निश्चय से जितेन्द्रिय जिन हैं !....** आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै, घट घट अन्तर जैन', वह जिनस्वरूप भगवान आत्मा का आश्रय लेकर पर की एकता तोड़ी, वह पर्याय में जिन हुआ। द्रव्य में तो जिन था। आहाहा! 'घट घट अन्तर जिन बसै' प्रत्येक घट में भगवान जिनस्वरूपी भगवान विराजमान है और 'घट घट अन्तर जैन' उस जिन का अवलम्बन लेकर पर की एकता तोड़ दी, वह जैन। जैन कहीं पक्ष या सम्प्रदाय नहीं है। समझ में आया? वह वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहाहा! बाहर से ऐसा कहलावे कि हम स्थानकवासी हैं और मन्दिरमार्गी हैं, वह जैन नहीं। 'घट घट अन्तर जिन बसै' — यह ज्ञानस्वभावी, जिनस्वभावी... आहाहा! इस जिनस्वभाव की अन्तर में प्रतीति करके पर की एकता तोड़ दी, वह वर्तमान पर्याय में जिन हुआ — जितेन्द्रिय जिन हुआ; पूर्ण जिन नहीं अभी पर्याय में। समझ में आया? ऐसी बातें, अब लोगों को (कठिन लगती हैं)। तीन लोक का नाथ अन्दर विराजमान है न प्रभु! आहाहा! 'तेरी नजर के आलसे रे प्रभु ते न निरख्या नैने हरि' यह स्तुति वैष्णव में आती है। 'मेरी नजर ने आलसे रे मै निरख्या न नैने हरि' हरि अर्थात् आहाहा! अज्ञान और राग-द्वेष को हरे, वह हरि। आहाहा! पंचाध्यायी में हरि का अर्थ किया है। आहाहा! वीतरागी ज्ञानस्वभावी

भगवान.... ज्ञानस्वभाव कहा न? (उसके) द्वारा आहाहा! इस वीतरागस्वभाव द्वारा, ज्ञानस्वभाव द्वारा, जिनस्वभाव द्वारा.... आहाहा! अन्य द्रव्य को पृथक् कर दिया। आहाहा! सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा!

ऐसे अपने आत्मा का अनुभव करता है, वह निश्चय से जितेन्द्रिय जिन है.... ज्ञानस्वभाव भगवान आनन्द ज्ञान, ज्ञान अर्थात् ज्ञायक सर्वज्ञस्वभाव, स्वरूप का, सर्वज्ञस्वरूप... आहाहा! अकेला (ज्ञानस्वभाव अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है) अर्थात् यह ज्ञानस्वभाव दूसरे किसी पदार्थ में नहीं है। भगवान के पदार्थ में भी यह ज्ञानस्वभाव नहीं है। आहाहा! और यह ज्ञानस्वभाव भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और पर भगवान, ये सब अचेतन, अर्थात् यह चेतन नहीं। आहाहा!

यह अद्भुत विस्मयकारी तत्त्व तेरा भगवान अन्दर है। आहाहा! आहाहा! उस तत्त्व के अवलम्बन से... आहाहा! अचेतन द्रव्यों में नहीं है.... वह वस्तुस्वभाव आनन्द और ज्ञान प्रज्ञाब्रह्म प्रभु... प्रज्ञा अर्थात् ज्ञान, ब्रह्म अर्थात् आनन्द... यह तो आता है या नहीं? वैष्णव में आता है। प्रज्ञाब्रह्म परन्तु उसकी पर्याय क्या और गुण क्या? — उसका तो पता नहीं। यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ है। आहाहा! क्योंकि जो ज्ञानस्वभाव अन्य चेतन नहीं (इसलिए उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक,...) आहाहा! भावेन्द्रिय, अरे! सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ से भी यह ज्ञानस्वभाव अधिक / भिन्न है। समझ में आता है? आहाहा! (उसके द्वारा आत्मा सबसे अधिक, भिन्न ही है।).... परिपूर्ण (है), आहाहा! 'मन्यते' वह जानने में आता है, अनुभव में आता है, वह चीज पर से अत्यन्त भिन्न है। तीन लोक के नाथ तीर्थंकर केवलीदेव से भी वह चीज भिन्न है। शिवलालभाई! यह तो यह आया, शुद्ध से भिन्न है और इससे वह भिन्न और उससे यह भिन्न।

भक्ति... भक्ति... भक्ति... इसमें स्वयं अपने को भूल गया। हम देव-गुरु की भक्ति करते हैं, इसलिए कल्याण होगा। परद्रव्य की भक्ति तो राग है। सूक्ष्म बात है भाई! स्वद्रव्य की भक्ति, वह वीतरागता है। भजन, अर्थात् पूर्णानन्द के नाथ का दृष्टि में भजन करना। आहाहा! वह वीतरागीस्तुति है, वह वास्तविक केवलज्ञानी की स्तुति है। केवलज्ञानी ऐसा कहते हैं — भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि हम तुझसे भिन्न हैं और हमसे

तेरी चीज भिन्न है — ऐसी भिन्न चीज की स्तुति करे, उसने वास्तविक केवलज्ञान की स्तुति की है। आहाहा! हमारे सामने देखकर हमारी स्तुति करे, वह तो राग है; वह आत्मा नहीं है। आहाहा! आता है, धर्मी को भी राग आता है परन्तु वह बन्धन का कारण है। व्यवहार आता है, जब तक पर्याय में वीतरागता न हो, वीतरागता-सर्वज्ञता न हो, तब तक साधक जीव को भी अपने भगवान आत्मा की एकाग्रता की स्तुति होने पर भी, पूर्ण एकाग्रता नहीं है; इस कारण भगवान का, देव-गुरु का विनय आदि का भाव आता है परन्तु वह भाव, पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया? लोगों को ऐसा कठिन लगता है। कितने ही तो ऐसा कहते हैं कि ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? भाई! मार्ग ही यह है बापू! आहाहा!

अरे! जन्म-मरण कर-करके कचूमर निकल गया है। आहा! बापू! तुझे पता नहीं है, भूल गया है। भूल गया, इसलिए नहीं था — ऐसा प्रभु! कौन कहे? आहाहा! जन्म के बाद छह महीने में, बारह महीने में क्या हुआ? यह पता है? माता-पिता ने कैसे किया, कैसे दिशा करने बैठाया — यह पता है? बालक को दो पैर लम्बे करके दिशा करने बैठाते हैं और ऐसे पैर में बैठाते हैं, यह पता है? (तुझे) पता नहीं, इसलिए नहीं था? हैं? आहाहा! काँख में बैठाते हैं और हाथ में.... यह छह महीने की, बारह महीने की क्रिया ख्याल में है नहीं; ख्याल में नहीं है तो नहीं थी? ऐसे अनन्त काल प्रभु, चार गति के दुःख अनन्त बार भोगे हैं, प्रभु! यह पता नहीं, इसलिए नहीं था — ऐसा नहीं है। है? लॉजिक से, न्याय से (बात है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि इस आत्मा के स्वभाव द्वारा सबसे अधिक-भिन्न... **कैसा है ज्ञानस्वभाव?.....** भगवान, यह ज्ञानस्वभाव, चैतन्य हीरा, आहाहा! आत्म हीरा कैसा है? इस विश्व के (समस्त पदार्थों के) ऊपर तिरता हुआ.... क्या कहते हैं? राग, देव, गुरु, शास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार को ज्ञान जाने, जानने पर भी उसरूप नहीं होता। समझ में आया? ऊपर तिरता है।

(उन्हें जानता हुआ भी उनरूप न होता हुआ),.... आहाहा! पर को जानता हुआ भी जानने में रहनेवाला है, पररूप नहीं होता। आहाहा! अग्नि को ज्ञान जाने तो उस

ज्ञान में अग्नि आयी नहीं और अग्निरूप ज्ञान हुआ नहीं परन्तु अग्नि सम्बन्धी का ज्ञान अपने में ज्ञान आता है। आहाहा! तो ज्ञान हुआ, अग्नि सम्बन्धी तो वह ज्ञान अग्निरूप हुआ है - ऐसा है नहीं। आहाहा! वैसे ही ज्ञान प्रभु (आत्मा) पर को जाने परन्तु पररूप होकर नहीं जानता। आहाहा! अपने में रहकर जानता है। पर का जानना हुआ, परन्तु पर के जानने से पररूप हुआ? वह पर का जानना, यह तो अपना जानना है। आहाहा! यह बात।

(उन्हें जानता हुआ भी उनरूप न होता हुआ), प्रत्यक्ष उद्योतपने से सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,.... आहाहा! प्रत्यक्ष है। आहाहा! जिसको जानने में राग और निमित्त की अपेक्षा नहीं है, तो सीधे अपने मति-श्रुतज्ञान से प्रत्यक्ष जानने में आता है। आहाहा! आहाहा! अभी तो निचली श्रेणी की बात है, हों! मति-श्रुतज्ञान... वह सम्यक् हुआ, वह प्रत्यक्ष जानता है। यह भगवान पूर्णानन्दस्वरूप, यह प्रत्यक्ष उद्योतपने से सदा अन्तरंग में प्रकाशमान,.... आहाहा! सदा अन्तरंग में प्रकाशमान, चैतन्यज्योति जलहलज्योति विराजमान प्रभु, आहाहा! अविनश्वर,.... कभी नाश नहीं होता। यह चीज है, वह कभी पलटती भी नहीं। पर्याय पलटे, वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! आहाहा!

स्वतःसिद्ध.... अपने से है; कोई उसका कर्ता-फर्ता है (नहीं)। समझ में आया? ईश्वर कर्ता है - कोई कर्ता कहे तो परमेश्वर ने तो (कहा) ईश्वर कर्ता नहीं (तो) ऐसा आत्मा बनाया तो ऐसे को उसने जन्म क्यों दिया? यदि ईश्वर कर्ता हो तो 'ईश्वर कर्ता नहीं है' ऐसे माननेवाले को जन्म क्यों दिया? बहिन तो घर से तुम्हारे है। एक बार विचार आया था, बा है न घर में, वह जरा विचार आया था, आहाहा! वह आती है न वेदान्त की पत्रिका नहीं? कल्याण। एक बार सुना था। आहाहा! 'कल्याण' (पत्रिका) आती है और घर में एक बार पढ़ते होंगे। आहाहा! भगवान! तेरा कल्याणस्वरूप तो अन्दर भिन्न है, उसका कोई कर्ता है? अरे, जो द्रव्य है, वह तो पर्याय का कर्ता नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञायक ध्रुवस्वरूप, वह अपनी निर्मलपर्याय का भी वह कर्ता नहीं। आहाहा! पर्याय का कर्ता पर्याय है, आहाहा! ऐसा मार्ग! अरे! जन्म-मरण का अन्त लाने का अवसर मिला, प्रभु! आहाहा! इस अवसर में नहीं समझेगा तो कब समझेगा? आहाहा!

स्वतःसिद्ध और परमार्थरूप.... परमपदार्थ, परम पदार्थ, परम अर्थ — परमार्थ,

परम अर्थ, परम पदार्थ — **ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है**। यह ज्ञानस्वभाव तो भगवान ज्ञान, आहाहा! भग, अर्थात् आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी; वान, अर्थात् लक्ष्मीवान आत्मा, भगवान है। ज्ञानरूपी लक्ष्मी। भग, अर्थात् ज्ञानरूपी लक्ष्मी, उसका वान, वह लक्ष्मीवान है, यह धूलवाला नहीं, ऐई...! सौभाग्यचन्दजी गुजर गये, नहीं? गुजर गये। उनके घर में से वे एक आते थे। आहाहा! भाग्य बिना यह कहाँ मिले बापू! आहाहा! ऐसा भगवान (आत्मा) ज्ञानस्वभाव है! आहाहा!

इस प्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई।..... यह एक प्रकार हुआ। इसमें स्तुति के तीन प्रकार हैं, उसमें यह एक प्रकार हुआ। पर से भिन्न होकर राग रहा परन्तु राग से भिन्न होकर एकत्व हुआ, यह पहली स्तुति कही गयी है। अभी राग बाकी है। समकिति को अनुभव होने पर भी, राग की एकता टूटी है परन्तु राग की अस्थिरता बाकी रह गयी है। समझ में आया? राग कहो या दुःख कहो, आहाहा! आनन्दस्वरूप में दुःख का — एकत्व का तो नाश किया परन्तु अस्थिरता का राग और दुःख है, वह बाकी है। समझ में आया?

इस प्रकार एक निश्चयस्तुति तो यह हुई। स्पष्टीकरण किया। (ज्ञेय तो द्रव्येन्द्रियों,... जो ज्ञेय पर है। भावेन्द्रियों.... ज्ञेय पर इन्द्रियों के विषय.... ज्ञेय पर। इन पदार्थों का और ज्ञायकस्वरूप स्वयं आत्मा का — दोनों का अनुभव, विषयों की आसक्ति से, एक सा होता था;.... अनादि से। जब भेदज्ञान से भिन्नत्व ज्ञात किया.... आहाहा! भावेन्द्रिय और परपदार्थ से भी भिन्नत्व भगवान है, उसका ज्ञान किया। अद्भुत बात भाई! तब वह ज्ञेय-ज्ञायक संकरदोष दूर हुआ.... दो एक थे — ऐसी मान्यता का नाश हुआ। परद्रव्य और परद्रव्यरूप राग तथा भावेन्द्रिय, यह एकत्व था, उसका नाश हुआ परन्तु (अस्थिरता) अभी बाकी अवश्य रहा है। अभी भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय का निमित्तपना, देव-गुरु का भी निमित्तपना (रहा है)। आहाहा! एकत्व से (एकत्वबुद्धि से) पृथक् हुआ परन्तु अभी अस्थिरता से पृथक् नहीं हुआ। यह दूसरे प्रकार की स्तुति ऊँची। पहली स्तुति तो पर से भिन्न कर दिया और आत्मा से एकत्व हुआ यह एक स्तुति।

गाथा ३२

अथ भाव्यभावकसंकरदोषपरिहारेण -

जो मोहं तु जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।
 तं जिदमोहं साहुं परमट्टवियाणया बेत्ति॥३२॥
 यो मोहं तु जित्वा ज्ञानस्वभावाधिकं जानात्यात्मानम्।
 तं जितमोहं साधुं परमार्थविज्ञायका ब्रुवन्ति॥

यो हि नाम फलदानसमर्थतया प्रादुर्भूय भावकत्वेन भवन्तमपि दूरत एव तदनुवृत्तेरात्मनो भाव्यस्य व्यावर्तनेन हठान्मोहं न्यक्कृत्योपरतसमस्तभाव्यभावक-संकरदोषत्वेनैकत्वे टंकोत्कीर्णं विश्वस्याप्यस्योपरि तरता प्रत्यक्षोद्योततया नित्यमेवान्तः-प्रकाशमानेनानपायिना स्वतःसिद्धेन परमार्थसत्ता भगवता ज्ञानस्वभावेन द्रव्यान्तर-स्वभावभाविभ्यः सर्वेभ्यो भावान्तरेभ्यः परमार्थतोऽतिरिक्तमात्मानं संचेतयते स खलु जितमोहो जिन इति द्वितीया निश्चयस्तुतिः।

एवमेव च मोहपदपरिवर्तनेन रागद्वेषक्रोधमानमायालोभकर्मनोकर्ममनोवचन-कायसूत्राण्येकादश पंचानां श्रोत्रचक्षुर्घ्राणरसनस्पर्शनसूत्राणामिन्द्रियसूत्रेण पृथग्व्याख्या-तत्त्वाद्ग्याख्येयानि। अनया दिशान्यान्यप्यूह्यानि।

अब, भाव्यभावक-संकरदोष दूर करके स्तुति कहते हैं —

कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मा।
 परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उन हि जितमोही कहा ॥३२॥

गाथार्थ : [यः तु] जो मुनि [मोहं] मोह को [जित्वा] जीतकर [आत्मानम्] अपने आत्मा को [ज्ञानस्वभावाधिकं] ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यभावों से

अधिक [जानाति] जानता है [तं साधुं] उन मुनि को [परमार्थविज्ञायकाः] परमार्थ के जाननेवाला [जितमोहं] जितमोह [ब्रुवन्ति] कहते हैं।

टीका : मोहकर्म फल देने की सामर्थ्य से प्रगट उदयरूप होकर भावकपने से प्रगट होता है तथापि तदनुसार जिसकी प्रवृत्ति है ऐसा जो अपना आत्मा — भाव्य, उसको भेदज्ञान के बल द्वारा दूर से ही अलग करने से इस प्रकार बलपूर्वक मोह का तिरस्कार करके, समस्त भाव्यभावक-संकरदोष दूर हो जाने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण (निश्चल) और ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यों के स्वभावों से होने वाले सर्व अन्यभावों से परमार्थतः भिन्न अपने आत्मा को जो (मुनि) अनुभव करते हैं वे निश्चय से जितमोह (जिसने मोह को जीता है) जिन हैं। कैसा है वह ज्ञानस्वभाव ? समस्त लोक के ऊपर तिरता हुआ, प्रत्यक्ष उद्योतरूप से सदा अन्तरंग में प्रकाशमान, अविनाशी, अपने से ही सिद्ध और परमार्थरूप ऐसा भगवान ज्ञानस्वभाव है।

इस प्रकार भाव्यभावक भाव के संकरदोष को दूर करके दूसरी निश्चयस्तुति है।

इस गाथासूत्र में एक मोह का ही नाम लिया है; उसमें 'मोह' पद को बदलकर उसके स्थान पर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, कर्म, नोकर्म, मन, वचन, काय रखकर ग्यारह सूत्र व्याख्यानरूप करना और श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसन तथा स्पर्शन — इन पाँच के सूत्रों को इन्द्रियसूत्र के द्वारा अलग व्याख्यानरूप करना; इस प्रकार सोलह सूत्रों को भिन्न-भिन्न व्याख्यानरूप करना और इस उपदेश से अन्य भी विचार लेना।

भावार्थ : भावक मोह के अनुसार प्रवृत्ति करने से अपना आत्मा भाव्यरूप होता है उसे भेद ज्ञान के बल से भिन्न अनुभव करनेवाले जितमोह जिन हैं। यहाँ ऐसा आशय है कि श्रेणी चढ़ते हुए जिसे मोह का उदय अनुभव में न रहे और जो अपने से उपशमादि करके आत्मानुभव करता है उसे जितमोह कहा है। यहाँ मोह को जीता है; उसका नाश नहीं हुआ।

गाथा - ३२ पर प्रवचन

अब, पर से भिन्न किया तो भी अन्दर में अभी राग बाकी रहा है। यदि राग न रहे तो वीतरागता हो जाये। समझ में आया? अतः सम्यग्दृष्टि भी जितेन्द्रिय हुआ तो भी,

जिनस्वरूप का अनुभव हुआ, तो भी राग बाकी है। आहाहा! अतः उस राग का जीतना किस प्रकार होता है? — यह बात करते हैं। समझ में आया? दो के एकत्व को छोड़ दिया परन्तु दो में राग अभी बाकी है। उसे अस्थिरता नहीं छूटी है। आहाहा! समझ में आया?

धर्मी को भी — सम्यग्दृष्टि को, ज्ञानी को, क्षायिक सम्यक्त्वी को भगवान के वन्दन-स्तुति का राग आता है। है राग, है दुःख, है आकुलता, है कषाय। आहाहा! समझ में आया? तो अब, भाव्यभावक-संकरदोष दूर करके.... इससे पहले में ज्ञेय-ज्ञायक एकत्व परज्ञेय और स्वज्ञायक (में) एकत्व माना था वह दोष दूर किया। अब यहाँ तदुपरान्त अब आगे जाते हैं। भाव्य-आत्मा, रागरूप होने के योग्य है, भावककर्म का उदय है; उस उदय के अनुसार अपनी योग्यता से जो राग था, उसको भाव्य कहते हैं। समकृती को भी वह भाव्य कहते हैं। आहाहा! भाव्य.... जो जड़कर्म है, वह भावक है परन्तु अपनी पर्याय में उसका अनुसरण करके जो विकारभाव होता है, वह भाव्य है। समकृती को-ज्ञानी को-मुनि को भी राग आता है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! गजब बात है।

अब ऐसा ही मान लेना कि ज्ञानी को दुःख है ही नहीं — (यह) विपरीत दृष्टि है। ज्ञान विपरीत हुआ, वहाँ दृष्टि विपरीत हुई। आहाहा! यहाँ तो एकत्व तोड़ दिया — भगवान ज्ञानस्वभाव दृष्टि में-अनुभव में आया तो राग की, परद्रव्य की, भावेन्द्रिय की एकता टूट गयी परन्तु अभी अस्थिरता रह गयी है। समझ में आया? इस कर्म का भावक.... भावक क्यों कहा? कि विकार, आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसलिए भावक कर्म का उदयभाव, भाव के करनेवाला और उसे अनुसरण करके राग अपने में होता है वह भाव्य; वह पर का अनुसरण जो है, वह भाव्य है — ऐसा न होने देना, वह दूसरी स्तुति है। समझ में आया? अब ऐसी बातें! अब यह तो कॉलेज है, थोड़ा तो अभ्यास हो तो ख्याल में आवे। आहाहा!

श्रोता : एकत्वबुद्धि टूटने के बाद तो यह सहज है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, अस्थिरता आती है न? इतना दोष है। दोष है, उसको जानता है परन्तु मेरी पर्याय में उदय के अनुसार मेरी भाव्यदशा, वह मुझमें होती है — ऐसा भान करता है। सूक्ष्म बात है। इसीलिए तो गाथा ली है। आत्मज्ञान हुआ, ज्ञानस्वभाव

भगवान पर से भिन्न हुआ परन्तु पर से-अस्थिरता से भिन्न अभी नहीं हुआ। यदि अस्थिरता से भिन्न हो जाये तो (पूर्ण) वीतराग हो जाये। आहाहा! सुमेरुमलजी! ठीक आये हैं ठीक, भाग्यवान है न, तभी ठीक इस चीज में आये हैं। आहाहा! यह वाणी कहाँ है प्रभु! आहाहा! यहाँ प्रभु कहते हैं कि एक जघन्य स्तुति तो राग और भावेन्द्रिय परज्ञेय है, मेरा ज्ञायक भिन्न है — ऐसा भान हुआ - सम्यग्दर्शन हुआ - सम्यग्ज्ञान हुआ — स्वरूप में आचरण भी थोड़ा हुआ परन्तु अभी स्वरूप में पूर्ण स्थिर होना, वह नहीं है, क्योंकि भावक जो कर्म है, उसके अनुसार अपनी विकारी पर्याय भाव्य होने में योग्य जीव है। भावक कर्म से भाव्य विकार होता है — ऐसा नहीं तथा विकारभाव होता ही नहीं — ऐसा भी नहीं परन्तु यह विकारीभाव, वह भावक जो कर्म है, उसके पर्याय समकित्ती ज्ञानी को भी, उसका अनुसरण होकर के जो विकार होता था, उसका नाम भाव्य है। यह पर का अनुसरण छोड़ना और अपना-शुद्ध का विशेष अनुसरण करना, यह दूसरे प्रकार की स्तुति है।

यहाँ तो उपशमश्रेणी की बात करते हैं। अन्दर उपशमश्रेणी, अर्थात् कर्म के उदय के अनुसार जो राग था, उसको स्वभाव के अनुसार उपशम करके छोड़ दिया, यह दूसरी स्तुति है। आहाहा! उपशमभाव हुआ। अभी सत्ता में रागादि हैं परन्तु उससे भिन्न होकर अपने में भाव्य जो भावक कर्म का.... निमित्त से होता नहीं परन्तु निमित्त परद्रव्य है, उससे क्या? परन्तु उसके अनुसार अपनी पर्याय में समकित्ती को भी, मुनि को भी जो राग आदि आता था, उस राग को भाव्य कहते हैं, और कर्म के उदय को भावक कहते हैं। आहाहा! अरे भगवान! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग है भाई! इसमें कोई उल्टा-पुल्टा एक भी फेरफार हो तो दृष्टि विपरीत है। आहा!

भाव्यभावक-संकर.... यह संकर अर्थात् एकत्व नहीं — एकत्वबुद्धि नहीं परन्तु इस राग के साथ अस्थिरता होती है, इतना संकर है, इतना दोष है। आहाहा! समकित्ती को, ज्ञानी को, क्षायिक समकित्ती को... आहाहा! जो अपनी पर्याय में, अपनी लायकात-योग्यता से कर्म के भावक को अनुसरण करके जो विकृतभाव होता था, इतना स्व का अनुसरण नहीं था। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानी को भी, समकित्ती को भी,

अरे! मुनि को भी, आहाहा! सच्चे मुनि, हों! भावलिंगी को भी जरा पंच महाव्रत का राग आदि आता है, वह कर्म-भावक का अनुसरण करके होता है, स्वभाव को अनुसरण करके विकार नहीं होता। निहाल! समझ में आया? प्रभु! यह तो अन्दर सत्यमार्ग है। इसमें कोई पक्ष करके बैठ जाये, वह वस्तु की स्थिति नहीं है। आहाहा! प्रभु-आत्मा की स्तुति के तीन प्रकार — ज्ञायकभाव की स्तुति, अर्थात् राग से पृथक् होकर अन्दर एकाग्र होना, वह प्रथम स्तुति है और दूसरी स्तुति आगे बढ़कर भावक जो कर्म है, उसके अनुसार अपने में अपनी कमजोरी से राग / दुःख की पर्याय होती थी वह भाव्य, उसको अपने स्वभाव के अनुसरण करके भाव्य नहीं होने देना, वह दूसरी स्तुति है। सुमेरुमलजी! भगवान देखो तो, आहाहा!
३२ (गाथा)

जो मोहं तु जिगित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं।

तं जिदमोहं साहुं परमट्टवियाणया बेंति॥३२॥

मोह का नाश करके, नहीं उपशम करके.... 'अधिक', अर्थात् समकित्ती को भी जो राग था, उससे अधिक अर्थात् भिन्न अन्दर अनुभव करे। अस्थिरता से भी भिन्न होकर... आहाहा! चौथे गुणस्थान में भी तीन कषाय बाकी है, पाँचवें गुणस्थान में दो कषाय बाकी है, छठवें में एक कषाय बाकी है। राग है, वह दुःख है। आहाहा! वह दुःख अपने स्वभाव का अनुसरण करने से नहीं होता परन्तु वह दुःख, कर्म के उदय के अनुसरण करने से (होता है) यहाँ अनुसरण छोड़कर, इतना अनुसरण किया तो इतना भाव्य और राग और दुःख हुआ। आहाहा!

विशिष्टता तो यह है कि राग हुआ, वह पर से नहीं; पर का अनुसरण किया, उससे हुआ है। स्व का अनुसरण करके एकत्वबुद्धि हुई — सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान हुआ परन्तु अभी राग है तो जितना अपना अनुसरण करना चाहिए, इतना अनुसरण नहीं है और कर्म के निमित्त के अनुसरण में राग — दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध — ऐसा राग आता है। उस राग को भाव्य कहते हैं और कर्म को भावक कहते हैं। दो का सम्बन्ध था, वह तोड़ दिया। स्वभाव का आश्रय लेकर उस अस्थिरता का नाश कर दिया। नाश नहीं, उपशम किया; नाश बाद में आयेगा। आहाहा! ऐसा स्वरूप प्रत्यक्ष है। आहाहा!

हरिगीत

कर मोहजय ज्ञानस्वभाव रु, अधिक जाने आत्मा ।

परमार्थ विज्ञायक पुरुष ने, उन हि जितमोही कहा ॥३२ ॥

गाथार्थ : जो मुनि.... अर्थात् यहाँ मुनि की प्रधानता से कथन है । भावलिंग तो प्रगट हुआ, मुनिदशा प्रगट हुई परन्तु अभी अस्थिरता का राग बाकी रहा, कर्म के अनुसार है । **जो मुनि मोह को जीतकर....** वह जो अस्थिरता का भाव था, उसे स्वभाव के अनुसार (अनुसरण) करके अस्थिरता को दबा दिया, ढँक दिया । समझ में आया ? अरे ! अब यह ऐसी बातें ! 'मोह' क्या कहा ? मोह, यह मिथ्यात्व नहीं । यह मोह मिथ्यात्व नहीं; यह मोह अस्थिरता का भाव । ज्ञानी को जो राग आता है, यह मोह है । मोह क्यों कहा ? कि पर तरफ की इतनी सावधानी रही; अपनी ओर की सावधानी इतनी नहीं रही । आहाहा ! **जो मुनि...** अब मुनि तो कहा, समकित्ती को मोह है परन्तु वह मोह, मिथ्यात्व का नहीं; चारित्रमोह का दोष है । समझ में आया ? **जीतकर....** उपशम करके-दबा दिया है । अपने स्वरूप में इतना उपशमभाव प्रगट किया । आहाहा ! **अपने आत्मा को ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्यभावों से अधिक....** यह भाव्य जो विकारीदशा, उससे भिन्न अब यहाँ लेना ।

पहली एकत्वबुद्धि का तो नाश पहले कर दिया, सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हुआ । अब जो अस्थिरता का राग आया, उससे अधिक अर्थात् मेरी चीज भिन्न है — ऐसा होकर राग को दबा दिया, उपशम कर दिया । आहाहा ! अरे ! ऐसी बातें ! यह तो प्रभु का मार्ग है भाई ! आहाहा ! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ऐसा कहते हैं । कुन्दकुन्दाचार्य तो भगवान के पास गये थे, आठ दिन रहे थे, वहाँ से आकर यह कहते हैं । भाई ! भगवान तो ऐसा कहते हैं कि पहली स्तुति तो ज्ञेय-भावेन्द्रियाँ आदि पर, उससे भिन्न करके अपने में एकाग्र होना और आनन्द का वेदन करना, स्वसंवेदन होना, वह आत्मा की-केवली की पहली स्तुति — प्रशंसा कही जाती है । आहाहा ! जो परद्रव्य की प्रशंसा करता था, आहाहा ! शुभराग, भगवान ऐसे और भगवान — ऐसे इस स्तुति को छोड़कर, अपना भगवान ज्ञानस्वभाव में एकाग्र हुआ, वह अपनी स्तुति, प्रशंसा की, फिर अभी बाकी रहा अस्थिरता (का राग) । अब एकत्वबुद्धि से स्तुति नहीं परन्तु अस्थिरता से जो स्तुति थी, आहाहा ! समकित्ती को,

क्षायिक समकिति को, अरे! मुनि को... आहाहा! मुनि कहते हैं न अमृतचन्द्राचार्य, तीसरे श्लोक में (कहते हैं न) अरे, मैं तो पवित्र भगवान् द्रव्यस्वरूप शुद्ध हूँ परन्तु मेरी पर्याय में अनादि से जो मलिनता है, वह अभी खड़ी है। मलिनता का अभाव पर्याय में (सर्वथा) नहीं हुआ। आहाहा! 'कल्माषितायां' ऐसा पाठ है, मेरी पर्याय में... वरना वे तो मुनि हैं, शुभभाव आता है तो कहते हैं — मेरी पर्याय में यह कलुषितता है। आहाहा! मैं तो परमानन्द का नाथ हूँ परन्तु मेरी पर्याय में अनादि से.... अभी भले अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, मुनिपना हुआ परन्तु पर्याय में जो अशुद्धता है, वह अभी गयी नहीं। भाई! आहाहा! तीसरे कलश में है।

है न? तीसरे कलश में है, तीसरा कलश, हों! अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं, वह चौथा पृष्ठ — इस समयसार शुद्धात्म ग्रन्थ की व्याख्या से ही मेरी अनुभूति-अनुभवरूप परिणति की परमविशुद्धि हो। कैसी है मेरी परिणति? आहाहा! परपरिणति का कारण मोह नामक कर्म, उसके अनुभाव्यरूप उदयरूप विपाक से मुझमें जो अनुभाव्य रागादि परिणाम होता है, आहाहा! भावमुनि, समकिति तो है परन्तु सन्त है, णमो लोए सव्व आयरियाणं — आचार्य पद में है परन्तु मैं छद्मस्थ हूँ, मेरी पर्याय में शुभभाव की कलुषितता उत्पन्न होती है। आहाहा! है? रागादि की व्याप्ति है। है अन्दर? मेरी पर्याय में राग-द्वेष का अंश, उसकी व्याप्ति है, मेरी पर्याय में है। आहाहा! मैं स्वरूप से तो परमानन्द शुद्ध चैतन्य हूँ परन्तु मेरी पर्याय में अभी अशुद्धता बाकी है। आहाहा! वह भावक, कर्म के अनुसरण से अपने में जरा पर्याय - भाव्य होती है, तो मैं कहता हूँ — इससे निरन्तर कल्माषित - मैली है। है! आहाहा! अरे! मुनि को अशुभभाव तो है नहीं। यह टीका बनाने का विकल्प उठा, वह मैल है — ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

और मैं द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्रमूर्ति हूँ। आहाहा! है? भावार्थ - उसका भावार्थ — आचार्यदेव कहते हैं — शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से तो मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ, शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति वस्तु हूँ किन्तु मेरी परिणति मोहकर्म के उदय का निमित्त.... निमित्त पाकर मैली है। मेरी पर्याय में राग है, दुःख है, आकुलता है। आहाहा! न हो तो मुझे परम आनन्द होना चाहिए। आहाहा! अरे! जगत को सत्य मिलना बहुत कठिन हो गया है।

आहाहा! मेरी (पर्याय) रागादिस्वरूप हो रही है। स्थापना करते हैं कि ऐसा इतना नहीं तो राग का अंश, द्वेष का अंश है, सत्य ऐसा है — ऐसी भी स्थापना करना, वह राग का अंश है। आहाहा! यह (कलश) १४३ में आया है।

इसलिए शुद्धात्मा की कथनीरूप समयसार ग्रन्थ की टीका करने का फल मेरी परिणति रागादिरहित होकर... मेरी परिणति में राग है। राग कहो, दुःख कहो, आकुलता कहो, कषाय कहो, आहाहा! भाषा तो ऐसी है कि मेरे शुद्धस्वरूप की प्राप्ति हो। मेरी परिणति रागादि रहित है, वह टीका करने का फल, ...परन्तु उसका अर्थ यह है, टीका करने का जो विकल्प है, उसका फल अशुद्धता का नाश है — ऐसा नहीं परन्तु टीका के काल में मेरी दृष्टि का जोर वहाँ — अन्दर जायेगा, उस टीका के काल में मेरी अशुद्धता का नाश होगा। आहाहा! यह तो अमृतवाणी है, अमृतचन्द्राचार्य के अमृत कलश! आहाहा! मेरी परिणति रागादिरहित होकर शुद्ध हो। मुनि कहते हैं कि मेरी पर्याय में राग है। राग-दुःख कहो, आकुलता कहो, आहाहा! तो मैं टीका के काल में, टीका से नहीं परन्तु पाठ में 'टीका से' शब्द है। टीका का विकल्प है परन्तु मेरा जोर अन्दर में है। आहाहा! उस जोर के और जोर के कारण अशुद्धता का नाश हो जायेगा, भैया! आहाहा! मुनिराज ऐसा कहते हैं। आचार्य पद — णमो लोए सव्वं आयरियाणं। आहाहा! वह यहाँ कहते हैं। विशेष अर्थ आयेगा। लो समय हो गया।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)